अनन्तानुबन्धी मोह

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

यह सृष्टि कर्मों का खेल है। जो जैसा कर्म करता है वह वैसा फल प्राप्त करता है। फल को बिना भोगे मुक्ति नहीं मिल सकती। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने निष्काम कर्म का उपदेश दिया है। निष्काम कर्म का अर्थ है फल की इच्छा का त्याग करके कर्तव्य कर्म करना। जो प्राणी निष्काम कर्म करता है वह संसार सागर से पार उतर जाता है। जैन धर्म में आठ प्रकार के कर्म बतलाये गये हैं। उन कर्मों में मोहनीय कर्म बड़ा ही सघन है। मोहनीय कर्म के कारण अज्ञान बढ़ता है। अनन्तानुबन्धी मोह चट्टान के समान है। पानी में खींची गयी लकीर तत्काल मिट जाती है। किन्तु चट्टान पर खींची गयी लकीर कभी नहीं मिटती। मिथ्यात्व अविरति, कषाय, प्रमाद और योग कर्मास्रव है। मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी हैं मोहनीय कर्म वह कर्म है जो आत्मा के हित, अहित को पहचानने की और तद्नुसार आचरण करने की बुद्धि को मोहित कर देता है। मोहनीय कर्म मदिरा के समान है। मदिरा पीकर मनुष्य भले–बुरे का विवेक खो देता है। इस कर्म के प्रभाव से जीव सत् असत् के विवेक रहित होकर परवश हो जाता है। इसको नष्ट करने का प्रयास करना चाहिए। जिस प्रकार सेनापति के मरते ही सारी सेना भाग जाती है उसी प्रकार मोहनीय कर्म के नष्ट होने पर सारे कर्म नष्ट हो जाते हैं। मोहनीय कर्म के उदय से जन्म–मरण का चक्र चलता रहता है। इस कर्म को काटने का प्रयास करना चाहिए।

मोहनीय कर्म के दर्शन मोहनीय, चारित्र मोहनीय दो भेद हैं। जो पदार्थ जैसा है उसे उसी रूप में समझना दर्शन है। तत्वार्थ श्रद्धान को दर्शन कहते हैं। यह आत्मा का गुण है। इस गुण को मोहित करने वाला कर्म दर्शन मोहनीय है। जिसके द्वारा आत्मा पूर्वसंचित कर्मराशि को नष्ट कर अपने मूल सच्चिदानन्दस्वरूप अर्थात् मुक्तावस्था को प्राप्त करता है उस उत्कृष्ट आचरण का नाम चारित्र है। चारित्र आत्मा का प्रमुख गुण है। इस गुण को नष्ट करने वाला कर्म चारित्र मोहनीय है। मोहनीय कर्म की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त सत्तर कोटा–कोटि सागर है

तथा अबाधाकाल साथ हजार वर्ष है। दर्शन कर्म मोहनीय के सम्यक्त्व वेदनीय, मिथ्यात्व वेदनीय और मिश्र वेदनीय तीन भेद हैं। जो क्षायिक एवं औपशमिक सम्यक्त्व को मोहित करता है तथा जिसमें क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का अनुभव विद्यमान रहता है उसको सम्यक्त्व वेदनीय कहते हैं। जो कर्म सम्यक्त्व मात्र को मोहित करता है एवं जिसमें प्रतिसमय मिथ्यात्व का वेदन रहता है उसे मिथ्यात्व मोहनीय कर्म कहते हैं। इस कर्म के उदय से जीव देव, गुरु, धर्म में श्रद्धा नहीं करता। जो कर्म तत्वार्थ श्रद्धा में डगमग स्थिति रखता है उसे मिश्र मोहनीय कहते हैं। इस कर्म की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूत्त है। इसके बाद या तो जीव पहले गुणस्थान में आकर मिथ्यात्व दृष्टि बन जाता है या चौथे गुणस्थान में जाकर सम्यक् दृष्टि बन जाता है। चारित्र मोहनीय कर्म के कषाय वेदनीय और मोहकषाय वेदनीय दो भेद हैं। जिस कर्म के उदय से प्रतिसमय कषाय का वेदन होता है एवं कषाय द्वारा जीव मोहित विवेक शून्य हो जाता है उस कर्म को कषाय वेदनीय या कषाय मोहनीय कहते हैं। कष अर्थात् जन्म–मरण रूप संसार की जिससे आय प्राप्त होती है वह कषाय है अथवा जो कई प्रकार के सुख–दुख के फल योग्य कर्मक्षेत्र का कर्षण करता है और आत्मा के शुद्ध स्वरूप को मलीन करता है वह कषाय है। कषाय जाज्वल्यमान अग्नि के समान है। यह जन्म–मरण रूप वृक्ष के मूल को सींचने वाला है। क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय है। प्रत्येक के अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यानावरण एवं संज्वलन ऐसे चार–चार भेद हैं।

जिस कषाय के प्रभाव से जीव उत्कृष्ट अनन्तकाल तक परिभ्रमण करता है उसे अनन्तानुबन्धी मोह कहते हैं। यह मोह सम्यक्त्व का घात करता है और जीवनपर्यन्त बना रहता है। सत्य को वह असत्य देखता है। क्रोध वेदनीय कर्म के उदय से होने वाला, कृत्य–अकृत्य के विवेक को नष्ट करने वाला प्रज्जवलन स्वरूप आत्मा का परिणाम क्रोध है। क्रोधी जीव किसी की बात नहीं सह सकता। वह सदैव अन्दर एवं बाहर से जलता ही रहता है। क्रोध से आत्मा का पतन हो जाता है। क्रोध प्रीति को नष्ट कर देता है। क्रोध मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। क्रोध तीक्ष्ण तलवार के धार के समान है। इसको उपशान्त भाव से समाप्त करना चाहिए जैसे पर्वत के फअने पर जो दरार हो जाती है उसका मिलना बहुत कठिन है वैसे जो क्रोध किसी भी उपाय से शान्त नहीं होता उसे अनन्तानुबन्धी क्रोध कहते हैं। इसी प्रकार अहंकार के उदय से

आत्मा का परिणाम मान कहलाता है। मान के कारण आत्मा में नम्र भाव नहीं रहता। अभिमानी जीव अपने आपको बड़ा और दूसरों को तुच्छ समझता है। अभिमान विनय को नष्ट कर देता है। अभिमान के कारण मनुष्य विवेक शून्य हो जाता है। पत्थर का बना खम्बा टूट तो सकता है परन्तु झुक नहीं सकता। जो मान किसी भी प्रकार से दूर नहीं किया जा सके वह अनन्बानुबन्धी मान है। माया वेदनीय कर्म के उदय से मन, वचन, काया की कुटिलता द्वारा उत्पन्न प्रवंचना आत्मा के परिणाम विशेष को माया कहते हैं। माया सद्गति का नाश करने वाली है, दुर्भाग्य को जन्म देने वाली है और दुर्गुति का कारण है। लोग वेदनीय कर्म के उदय से उत्पन्न द्रव्यादि विषयक इच्छा, मूर्च्छा, ममत्व भाव एवं तृष्णा असंतोष रूप आत्मा के परिणाम विशेष का नाम मोक्ष है। इस प्रकार अनन्तानुबन्धी मोह जीव को जन्म–जन्मान्तर भटकाता रहता है।